डॉ. अनिरुद्ध प्रसाद
हिन्दी विभाग
महाराजा कालेज

24.08.20

रीतिकाल

प्रश्न : हिन्दी रीतिकाव्य में व्यक्त शृंगार भावना के स्वरूप पर प्रकाश डालिए।

उत्तर : मुगल शासन के अंतिम दिनों में भारतीय समाज में दो ही आर्थिक वर्ग थे — (1) राजा, सामंत, मनसबदार (2) कृषक और श्रमिकों का उत्पादक वर्ग। दोनों का संबंध क्रमशः क्षीण होता जा रहा था। मुगल काल के अंतिम दिनों में इन दोनों की दुनिया लगभग अलग हो गयी थी। यह व्यवधान कोई नया नहीं था। मौर्य और गुप्त काल के राजाओं के काल से ही उसका आरंभ हो गया था। सन् ईस्वी की पहली या दूसरी सदी में ही नागर और जनपद का अंतर स्पष्ट हो गया था। एक के लिए कामशास्त्र अलंकृत काव्य और नाटक लिखे जाने लगे थे और दूसरे के लिए व्रत, संयम बनाने वाले स्मृति पुराण। जैसे-जैसे साम्राज्य व्यवस्था संगठित होती गयी और राजनीतिक सत्ता सिमटती गयी, वैसे-वैसे यह व्यवधान भी बढ़ता गया। मुगल काल में यह व्यवस्था अपनी चरम सीमा तक पहुँच चुकी थी। इस व्यवस्था को जिलाने के लिए एक बरसाती खड़ी की गयी। रीतिकाल इसी बाहरी और का प्रकाश है

इन मध्य वर्षों में कवियों, चित्रकारों, संगीतज्ञों आदि ने भोक्ता वर्ग की स्तुति और मनोविनोद करके जीविका निर्वाह करता था। जिस प्रकार मालिकों का मनोरंजन इन कवियों और कलावंतों को करना पड़ता था, उस वर्ग को संतुष्ट करने के लिए उस प्रकार के जीवन से परिचित होना पड़ता था। इसके लिए नाना प्रकार की कामशास्त्र वाली पुस्तकों को उन्हें उपलब्ध करवाया जाता था उक्ति वैचित्र्य विवरण वाले अलंकार शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करना पड़ता था। नायक-नायिका भेद वाले शास्त्रों का अध्ययन करना पड़ता था।

जिसे हम रीतिकाव्य कहते हैं वह मूलतः शृंगारी काव्य है। आचार्य शुक्ल ने लिखा है — "वास्तव में शृंगार और वीर रस इन्हीं रसों की कविता इस काल में है। प्रधानता शृंगार की रही है। इससे इसे कोई शृंगार काल कहे तो कहा जा सकता है। शृंगार वर्णन में बहुत से कवियों ने अश्लीलता की सीमा तक पहुँचा दिया। इसका कारण जनता की रुचि नहीं बल्कि महाराजा की रुचि थी जिनके लिए कर्मण्यता और वीरता का महत्व जीवन में बहुत —

हो गया था।

रीति काव्य यद्यपि श्रृंगार काव्य है, पर इस श्रृंगार रस की साधना में संतुलित दृष्टि का अभाव है। जैसे सब ओर से छोटकर बुद्धि बिखर गयी हो। जीवन के व्यापक क्षेत्रों में मनोविनोद का अवसर न मिलने के कारण मनोरंजन का एकमात्र साधन नारी देह हो गया है। श्रृंगार में न तो प्रिया का व्यक्तित्व उभरता है, उसका साधारण नारीत्व का आकर्षण ही शेष बचता है। न यहाँ प्रिया की प्रीति जीतने का कोई असीम साहस है न ही कोई कार्य योजना। केवल कला का भोंडा प्रदर्शन ही दिखता है। यहाँ प्रेम मुख्य रूप से महत्वाकांक्षा से शून्य, सामाजिक मंगल के मनोभावों से प्रायः असंपृक्त, पिण्ड नारी के आकर्षण से हततेज और स्थूल प्रेम व्यंजना है। फिर भी वह मोहक है क्योंकि चित्त को विश्राम देने का यह महान गुण है। यहाँ सब ओर से एक रुद्ध गति है, मानव व्यापारों का विश्राम भूमि है, कर्मठ बहुधा विभक्त चित्त की गतिशील प्रक्रिया को एक सामाजिक विश्राम स्थल है। यह वास्तविक जीवन की जटिलताओं पर आधारित नहीं है। इसका आधार फलक बहुत सिकुड़ा, संकरा और संकुचित है। जीवन के मूल प्रश्नों से इसका कोई संबंध नहीं। यहाँ वास्तविक जीवन की जटिलताओं का सामना करने का न तो साहस है और न ही सामाजिक मंगल का भाव। यहाँ श्रृंगार को ही जीवन का सबसे बड़ा सत्य घोषित कर दिया गया है।

इस श्रृंगार साहित्य की विशेषता यह है कि इसमें व्यक्त श्रृंगार के आश्रय में भी युगधर्म और अध्यात्म के आश्रय की भाँति श्रीकृष्ण ही हैं। ~~अध्यात्म की दृष्टि से~~ इस श्रृंगार भावना को रीतिकाव्यकारों ने भक्ति का आवरण दिया है। राधारानी और गोपाल लला घूम-फिर कर श्रृंगार की सभी ~~विविध~~ चेष्टाओं का विषय बन जाते हैं। यह भक्ति-भावना इस युग के कवियों के लिए कवच का काम करते हैं।

विलासिता से पूर्ण उन्मुक्त प्रेम की अभिव्यक्ति तथा नारी के प्रति सामंती दृष्टि होते हुए भी इस प्रवृत्ति में गृहस्थिकता का रस भी कहीं-कहीं दिख जाता है। डॉ० महेन्द्र कुमार के अनुसार — "ये नायकों की रसिकता ~~[illegible]~~ अपनी पत्नियों

प्रेम के साथ किये गये उचित-अनुचित व्यवहार, जो प्रायः बाहर नहीं जा सकते हैं। किंतु विचार करने की बात है कि गृहस्थिक जीवन का स्वरूप वही है जो नायिका भेद ग्रंथों में मिलता है तो दरबारों, अंतपुरों और साधारण गृहस्थों के घरों में ज्यादा फर्क नहीं करता होगा।"

रीतिकाल के शृंगार के कवि का प्रधान आकर्षण नारी का मादक रूप ही है। इस साहित्य में नारी अपनी महिमा से महीयसी नहीं बन जाती। वस्तुतः उसके चरित्र में रईसी की छाप है। नायिका के चित्र को मादक बनाने के लिए आडम्बरपूर्ण वातावरण और वेशभूषा का सहारा लिया गया है। उनकी नायिकायें विशाल प्रासादों में रहती हैं, उनके की चादर चाँदनी और दूध की धवलता को लज्जित करती है। उनके पायदान में बहुविध मखमल का उपयोग होता है। उनकी सेवा में दास, दासियाँ जिन पायदानों, फूलदानों एवं इत्रदानों का व्यवहार करती हैं, उनमें सोने-चाँदी की बहार रहती है। नायिकाओं के परिधान में कीमखाब, साटन, मलमल आदि वस्त्र प्रमुख होते हैं। उनकी साड़ियों के किनारी स्वर्ण खचित होते हैं और चारु चुनरी चटकीले रंग के होते हैं। पुरुषों के वस्त्र की उतनी चर्चा नहीं होती। कभी-कभी पाग, पगड़ी और पाजामे का जिक्र हो जाता है। किंतु स्त्रियों के आभूषण और वस्त्राभूषणों के सामने इनका कोई महत्व नहीं है। रीतिकाल के कवि अपनी नायिकाओं को गरीब नहीं देख सकते। बिहारी से लेकर ग्वाल तक सभी कवियों के चित्र में नायिका ऐसी ही ऐश्वर्यदीप्त शोभा का मान बढ़ाती है। रीतिकालीन कवि सौंदर्य को तबतक बहुत कीमती नहीं मानता जबतक वह मादक बनकर प्रकट न हुआ हो। सहज वस्तु को मादक बनाकर उपभोग्य समझना रीतिकालीन मनोवृत्ति की सबसे बड़ी विशेषता है।

रीतिकाव्य में व्यक्त शृंगार भावना का महत्व इस में है कि इस काव्य ने तत्काली समाज का दृश्य हमारे सामने उपस्थित कर दिया है। उस समय के राजा-महाराजाओं की रुचि किस ओर थी, इससे पता चलता है।

यह साहित्य यह बतलाता है कि अर्थ और यश का कामी रचनाकार जन-जीवन से कितना कट गया था तथा,

समाज का नैतिक पतन हो रहा था। वह वासना को ही दुनिया में प्रेम घोषित करना चाहता था। किसी नारी की आंतरिक वेदना को वह न समझ सका। मानव मूल्यों की सार्थकता इसमें नहीं है, वह न समझ सका।

काव्य की अभिव्यंजना, साज-सज्जा तथा अलंकृति ही उनके काव्य का वैभव है। इसमें अलंकरण की सामग्री का वैसा ही उपयोग नहीं हुआ है, जैसा, मीरा, सूर और तुलसी के काव्य में हुआ है। विलास युग के रंगोत्सव, उपमानों और प्रतीकों के प्रचुर प्रयोग से रीतिकाव्य की अभिव्यंजना दीपावली की तरह जगमगाती तो है किंतु जिसी आत्मा की पुकार सूर, घनानंद और मीरा में मिलती है वह यहाँ नहीं है। आधुनिक युग के विशिष्ट महाकाव्यों के समान व्यापक जीवन, समीक्षा और छायावादी कवियों का सूक्ष्म सौंदर्य-बोध भी यहाँ उपलब्ध नहीं है। परंतु मुक्तक परंपरा की गोष्ठी, मंडन और कविता का जैसा उत्कर्ष रीतिकाव्य में हुआ है, वैसा न इसके पूर्ववर्ती काव्य में और न परवर्ती काव्य में संभव हो सका है। डा० नगेन्द्र के शब्दों में — "जीवन के मार्ग में सरसता मूल्य नगण्य नहीं है। जीवन के मार्ग में धीर और प्रबुद्ध गति से निरंतर आगे बढ़ना तो श्रेयस्कर है ही, किंतु कुछ क्षणों के लिए किनारे पर लगे वृक्षों की शीतल छाँहों में विश्राम करने का अपना मूल्य है।"

P.G. Semeste-I
CC-3
"Riti Kavya men Sringar"